वैदिक रहस्य, प्रथम भाग

ओ३म्

चतुर्दश-भुवन ॥

सम्पादक—

शिवशङ्कर शर्म्मा

राजकिशोर वर्म्मा एण्ड ब्रदर्स ने
मुद्रित किया
राजनीति प्रेस पटना सीटी।

द्वितीय बार
१०००

संवत १९६९ वि०
सन १९१२ ई०

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षु,
र्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः
किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ।ऋग् ६।९।६॥

(मे + कर्णौ + वि + पतयतः) मेरे दोनों कान इधर उधर दूर २ गिर रहे हैं (चक्षुः + वि) मेरे नयन भी इधर उधर दूर २ दौड़ रहे हैं (हृदये + यद् + इदम् + ज्योतिः) हृदय में स्थापित जो यह ज्ञानरूप ज्योति है वह भी (वि + पतयति) दूर भाग रहा है (दूरेआधीः + मे + मनः + वि + चरति) अति दूरस्थ विषय में ध्यान लगाकर मेरा यह मन भी दूर २ विचरण कर रहा है ऐसी अवस्था में प्रभु के समीप (किम् + स्विद् + वक्ष्यामि) क्या मैं कहूंगा और (किम् + उ + नु मनिष्ये) क्या मनन करूंगा ।

शिक्षा—प्रत्येक मनुष्य का नित्य का यह अनुभव है कि कर्ण, चक्षु, मन आदि इन्द्रिय किसी कार्य में स्थिर नहीं रहते । किञ्चिन्मात्र ही मौका मिलने पर झट से इधर उधर भागने लगते हैं । ऐसी अनवस्थित दशा में मनुष्य सूक्ष्म कार्य कदापि नहीं करसकता अतः यहां प्रार्थनाहै कि हे परमात्मदेव ! मेरे कर्ण, नयन, हृदयस्थ ज्ञान और यह मन सबही चारों तरफ भाग रहेहैं । मैं कैसे आपके गुण गाऊं कैसे मनन करूं । हे भगवान् ! आशीर्वाद करो जिससे मेरे सब इन्द्रिय समाहित होंऔरउनकेद्वाराआपकीपरम विभूतियांदेखूं। इस

पृथिवीपर अभीतक जो ज्ञान, विज्ञान, कलाएं, कौशल, शास्त्र आदि प्रकाशित होचुके हैं, होरहे हैं और होनेहारेहैं वे सबही इसी आत्मा से निकलेहैं, निकलरहे हैं, निकलेंगे। इस तत्त्व को जो जानताहै वही पण्डितहै। सो यह आत्मा मन और इन्द्रियोंका अधीनहै जिसके इंद्रिय चंचल चपल हैं उसका आत्मा कुछ नहीं कर सकता इन्हीं इन्द्रियों को विवश करने के लिये वेदों से लेकर अद्यावधि सहस्रों लक्षों गाथाएं लिखीगई हैं और लिखी जारही हैं। मैं भी आज इनकी ही गाथा वेदों से दिखलाता हूं इसके साथ २ अनेक वस्तुओं का भी निर्णय होगा।

सप्तऋषि आदि—दो नयन, दो श्रोत्र, दो घ्राण (नाकें), एक मुख ये मिलके सात ऊपर के अङ्ग होते हैं। इन्हीं सातों को सप्त ऋषि, सप्त होता, सप्त ऋत्विक्, सप्त देव, सप्त असुर, सप्त प्राण, सप्त लोक, सप्त द्वीप, सप्त सागर, सप्त सिंधु, सप्त नदियां, सप्ताचल इत्यादि नाना नामों से पुकारते हैं। दो हस्त, दो चरण, एक मलेन्द्रिय, एक मूत्रेन्द्रिय और एक मध्य शरीर अर्थात् गर्दनसे नीचे कमर से ऊपर का भाग, ये मिल के सात नीचे के अवयव होतेहैं, इन्हीं सातोंको पुराणोंमें सप्त पाताल, सप्त अधोलोक, सप्त अधोभुवन, सप्त नरक इत्यादि विविध नाम देतेहैं, नयन आदि सप्त और हस्त आदि सप्त, मिलके (१४) चतुर्दश होतेहैं, ये ही चतुर्दश लोक चतुर्दश भुवन प्रभृति नाम से कहे जाते हैं। पुराणों में अत्यन्त विस्तार से इनका

वर्णनहै। शिरस्थ नयन आदि सातोंको भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक कहतेहैं। और हस्त आदि सातोंको अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल कहते हैं येही चतुर्दश भुवन हैं। यह सब वर्णन इस देहमात्र का है। इसी शरीर में ये चौदह लोकहैं इनको सब प्रकार से जाने जनवावें। इनके पूर्ण ज्ञान से मनुष्य को मंगल-कल्याण होता है। पश्चात् धीरे २ इसके यथार्थ भावको लोग भूल गये तब इस शरीरको छोड़ वाह्य जगत् में १४ चतुर्दश भुवन खोजने लगे। स्वरचनानुकूल और स्वस्वबुध्यनुसार इसकी व्याख्या होनेलगी। आश्चर्य की बात है जो केवल शरीरमात्र का विवरण था वह अब इस अनन्त अनादि जगत् का विवरण बनगया। विद्वान् लोगभी इस को ऐसेही मानने मनवाने लगे। क्यों ऐसा महापरिवर्तन वा उलट पुलट हो गया? इस प्रश्न का एकमात्र यही समाधान है कि वेदोंको न पढ़ना, पढ़ाना ही इस महान् अज्ञान का कारण है—अब मैं वेदों के मन्त्रों को लेकर अतिसंक्षिप्त रूप से इस विषय का दिग्दर्शनमात्र करवाताहूं। आप देखते जायंगे कि वैदिक परिमित पदार्थों से यह लौकिक जगत् कितना विस्तीर्ण बन गया है।

सात ऋषि॥

अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं

विश्वरूपम्। तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना॥ बृहदारण्यकोपनिषद् २।२।३।

प्रथम उपनिषद् का ही प्रमाण इस हेतु लिखा है कि इस की व्याख्या स्वयं एक महर्षि याज्ञवल्क्य ने कियाहै और किंचित् पाठभेदके साथ वेदमें भी यह मंत्र आया है आगे देखिये। अर्थ—(अर्वाग्बिलः) जिसका बिल अर्थात् छिद्र नीचे हो (ऊर्ध्वबुध्नः) और जिसकी जड़ ऊपर हो ऐसा (चमसः) एक चमस नाम का पात्र है (तस्मिन् । विश्वरूपम्+यशः+निहितम्) उस चमस में सब प्रकारके रूपवाला यश स्थापित है। (तस्य+तीरे+सप्त+ऋषयः+आसते) इसके तीर पर सात ऋषि बैठे हुए हैं (अष्टमी+वाग्+ब्रह्मणा+संविदाना) और आठवीं वाणी ब्रह्म के साथ संवाद कर रही है। ये इसके पदार्थ हुए। अब इसका आशय स्वयं ऋषि इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"यह शिर ही चमस है इसकी जड़ ऊपर और मुख-रूप छिद्र नीचे है। इसी में सब यश स्थित हैं। इसके तीर पर दो नयन, दो श्रोत्र, दो घ्राण और एक मुख अथवा रसना ये ही सात ऋषि बैठे हुए हैं—और आठवीं वाणी ब्रह्मका विचार कर रही है। ये दोनों कर्ण=गौतम और भरद्वाज हैं। ये दोनों आंखें=विश्वामित्र और जम-दग्नि हैं। ये दोनों घ्राण (नाकें)=वसिष्ठ और कश्यप हैं (रसनाका कोई विशेष नाम नहीं दिया गयाहै) वाणी=अत्रि है" यहां देखते हैं कि सप्तऋषि पद से स्वयं महर्षि

कर्ण आदि सात इन्द्रियों का ही ग्रहण करते हैं और इन के नाम भी गौतम भरद्वाज आदि पृथक् २ रखते हैं।

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नो यस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्। अत्रासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः। अथर्ववेद। १०। ८। ९॥

यह ऋचा निरुक्त देवतकाण्ड ६। ३८ में भी आई है। अर्थ—जिसका बिल नीचे मूल ऊपर है ऐसा एक चमस नाम का पात्र है जिसमें सब प्रकार का यश स्थापित है। यहां इसके साथ सात ऋषि हैं जो इस महान् (शरीर) के रक्षक हैं। अर्थ पूर्ववत् ही है। यहां अष्टमी वाणी की चर्चा नहीं है पुनः

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम-प्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ निरुक्तदैवत काण्ड अ० ६। ३७॥

(शरीरे + सप्त + ऋषयः + प्रतिहिताः) शरीर में सात ऋषि स्थापित हैं (सप्त + अप्रमादम् + सदं + रक्षन्ति) सातों प्रमादरहित हो शरीर की रक्षा करते हैं (आपः + स्वपतः + लोकम् + ईयुः) बहुत फैलने हारे सातों सोते हुए पुरुष के आत्मा के निकट जाते हैं (तत्र + अस्वप्नजौ + सत्र-सदौ + च + देवौ + जागृतः) उस समय न सोने हारे सदा शरीरस्थ दो देव जागे हुए रहते हैं

ये ही दो नयन, दो कर्ण, दो नासिकाएं और एक जिह्वा सात ऋषि हैं जो शरीर के उपरितन भाग शिर में स्थित हैं ये ही सातों शरीर की रक्षा करते हैं ये ही सुषुप्त्यवस्था में जीवात्मा से मिलकर कुछ देर शान्तिलाभ करते हैं। इस समय मुख्य प्राण और आत्मा ये दोनों देव जागते रहते हैं! यहां "शरीर में सात ऋषि स्थित हैं" इतने कहने मात्र से सिद्ध होता है कि इन इन्द्रियों का ही विवरण हैं। यास्काचार्यादिकों ने भी इसी अर्थ का ग्रहण किया है।

इतनाही नहीं किन्तु वेदों में विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि, अङ्गिरा आदि जितने ऋषिवाचक शब्द आये हैं वे प्राणवाचक हैं अथवा प्राणविशिष्ट जीवात्मवाचक है। प्राण नाम इन्द्रियों का है अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों में "प्राणा वै ऋषयः" शत० ६। १। प्राणा वै ऋषयः। इस प्रकार का पाठ बहुत आता है। शतपथब्राह्मण के अष्टमकाण्ड के आरम्भ में लिखा है कि—प्राणो वै भौवायनः। प्राणो वै वासिष्ठ ऋषिः। मनो वै भरद्वाजः। चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः। श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः। वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः। इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि वेदों में जो वशिष्ठ आदि पद आये हैं वे प्राणों के नाम हैं।

पुनः बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य कहते हैं—

१--वाग्वै यज्ञस्य होता। २--चक्षुर्वै यज्ञस्याऽध्वर्युः। ३--प्राणो वै यज्ञस्य उद्गाता। ४--मनो वै यज्ञस्य

ब्रह्मा। पुनः सप्त वै शीर्षन् प्राणाः। ऐतरेय ३।३॥ शिर में सात प्राण हैं। सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च। वेदान्तसूत्र।२।४।५॥ इस वेदान्त सूत्र से भी शिरस्थ सात ही प्राण निर्धारित हुए हैं। इत्यादि अनेकानेक प्रमाणों से सिद्ध है कि जहां २ शरीरस्थ सप्त ऋषियों का वर्णन है वहां २ इनहीं नयनादि सातों का ग्रहण है।

शिक्षा——वेदभगवान् कहते हैं कि यह शिर चमस पात्र के समान है इस में सब यश स्थापित हैं। इसके तट पर सात ऋषि बैठे हुए हैं। अष्टमी ऋषिका वाणी ब्रह्म के साथ संवाद कररही है। ऐ मनुष्यो! ऐसा यह तुम्हारा शरीर परम पवित्र मैंने बनाया है। जहां एक ज्ञानी पुरुष रहता है वहां अन्धकार विलुप्त होजाता तुम्हारे शरीर में तो सत्यासत्य निर्णय के लिये सप्त ऋषि स्थापित हैं तब तुम ज्ञान की ओर नहीं आते हो यह कैसा आश्चर्य है। पुनः ये नयनादिक इन्द्रिय ऋषि हैं इनकी लज्जा रक्खो इन्हें कलङ्कित मत करो। इनसे योग्य कार्य लो। देखो! तुम्हारे शिर में सबही यश स्थापित हैं ज्ञान--विज्ञान की नदियों शिर में बह रहीहैं। महाप्रकाश होरहा है। इस प्रकाशमय शिरसे जिस ने कार्य्य लिया वह सूर्यवत् जगत् में देदीप्यमान हुआ उसकी कीर्त्ति और यश अभीतक पृथिवी पर स्थिरहै और बहुत दिनों तक रहेगा। पुनः वेद कहते हैं कि मानो यह शरीर एक महानगर है इसके नयनादि सात ऋषि रक्षक हैं। प्राण और जीवात्मा सदा जागते

हुए रक्षाकर रहेहैं । किन्तु ऐ मनुष्यो ! जो रक्षा के लिये है उन्हें तुम अपने आचरणोंसे भक्षक बना देते हो वे ही सात ऋषि तुम्हारे लिये पीछे महान् असुर व्याघ्र सिंह बन जाते हैं तुम्हारा सर्वनाश होजाता अतः ऐ प्यारे ! ऐसा यत्नकरो कि ये सात ऋषि सदा ऋषि ही बने रहें । शुद्ध आचरण ज्ञान विज्ञान की ओर जाने, जिज्ञासा में तत्पर होने, आलस्य के त्यागने और प्रयत्न आदि व्यापार से ये सदा ऋषि बने हुए रहेंगे अन्यथा बिगड़ के सिंहवत् राक्षसवत् पिशाचवत् तुम्हें खा जायंगे, इति ।

समीक्षा—वेद के उक्त प्रमाणों से निश्चय हुआ कि नयनादि सात इन्द्रियों को सप्त ऋषि कहते हैं। वेदों के इस नियम का सदा स्मरण रखना चाहिये कि नियत संख्या का वर्णन वेदों में आता है । शिर में दो कर्ण, दो नयन, दो घ्राण और एक मुख ये सात नियत हैं परन्तु इस जगत् में न सप्त ऋषि, न सप्त नदियां, न सप्त नक्षत्र, न सप्त पर्वत न सप्त सागर इत्यादि नियत हैं क्योंकि बाह्य जगत् में वे सब न्यून और अधिक हो सकते हैं अतः सप्तपद से नियत शीर्षण्य सप्तेन्द्रिय को त्याग अन्य मनुष्यादियों का ग्रहण करना बुद्धिमत्ता नहीं । अब आप देखेंगे कि इस सप्तर्षि को लेकर कितने प्रकार के सप्त ऋषि बनाये गये—

सप्त ब्रह्मर्षि देवर्षि महर्षि परमर्षयः । काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावराः । इति रत्नकोषे । मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहःक्रतुः । पुलस्त्यश्च

वसिष्ठश्च सप्तैते महसाःसुताः ॥ ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा । निश्चरश्चार्ववीरश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् । अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपश्च महानृषिः । गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ॥ रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान्कृप एव च । ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रोणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥

इत्यादि प्रमाण मार्कण्डेय हरिवंश विष्णु पुराण आदि-कों में विद्यमान हैं यदि ऋषि सम्बन्धी सब ही सप्तकगण लिखे जायें तो इन्हीं का एक बड़ा ग्रंथ बन जाय। ये सब धीरे २ अनेक सप्तकगण बन गये । व्यासादि सप्त महर्षि, भोज आदि सप्त परमर्षि ॥ कण्व आदि सात देवर्षि । वसिष्ठ आदि सप्त ब्रह्मर्षि, सुश्रुत आदि सप्त श्रुतर्षि । ऋतुपर्ण आदि सप्त राजर्षि, जैमिनि आदि सप्त काण्डर्षि कहलाते हैं। यह रत्न कोष कहता है। पुराणों ने प्रत्येक स्वायंभुव स्वारोचिष इत्यादि मन्वन्तर में सप्त २ ऋषियों की कल्पना की है। प्रत्येक पुराण अपनी २ गाथा भिन्न २ रूप से गाता है इसकी प्रणाली देखने से इनका काल्पनिकत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। आकाश में भी सात ऋषि मानते हैं। जिज्ञासु पुरुषो ! यह सब कल्पनामात्र है। जब वेदों का अर्थ भूल गये तब नाना कल्पनाएं करके आदि कवि परमात्मा के सब भाव को कलुषित करने लगे।

सप्त होता ॥

एभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ ऋग् १०।६३।७॥

(मनुः+समिद्धाग्निः) मनु समिद्धाग्नि हो अर्थात् अग्नि को जलाय (एभ्यः+प्रथमाम्+होत्राम्) इनके निमित्त सर्व श्रेष्ठ आहुति को (मनसा+सप्त+होतृभिः+आयेजे) मन और सप्त होताओंके साथ अच्छे प्रकार देतेहैं (आदित्याः+ते+अभयं+शर्म्म+यच्छत) हे आदित्यगण ! वे आप भय-रहित कल्याण भवन देवें (नः+स्वस्तये+सुपथा+सुगा+कर्त्त) और हमारे कल्याणार्थ सुकर वैदिक मार्ग को सुगन्तव्य बनावें ।

शिक्षा—यहां मन्ता,बोद्धा,विज्ञानी, जीवात्मा का नाम मनुहै वह मनु नयन आदि सात होताओं और मन के साथ सदा अध्यात्म याग किया करताहै। ज्ञानविज्ञान रूप सुप्रकाश का नाम यहां आदित्यहै। इस शरीरमें मनुनामी जीवात्मा ज्ञानविज्ञानकी प्राप्ति की इच्छा से समाहित हो जो मननादि व्यापार करताहै यही महायज्ञहै। इसीसे निर्भयता और शोभनपथ प्राप्त होते हैं। यहां मन के साथ सप्त होता शब्दके पाठसे विस्पष्टतया सिद्धहै कि यहभी इन्हीं सात इन्द्रियोंका व्याख्यानहै। इसी अध्यात्म यज्ञको देख लोगोंने द्रव्यात्मक यज्ञकी रचनाकी। नयनादि सात होताओंकी जगहमें सात मनुष्य होता बनाये गए। मन के स्थान में ब्रह्मा, मनुके स्थान में यजमान कल्पित हुए। वेदों में

इस अध्यात्म यज्ञ का व्याख्यान विविध प्रकारसे आये हैं इसी हेतु द्रव्यात्मक यज्ञ में भी विभिन्नता होती गई।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्प-मस्तु ॥ यजु० । ३४ । ३ ॥

(येन+अमृतेन) जिस अमृत अर्थात् शाश्वत अविनश्वर मनने (इदम्+भूतं+भुवनं+भविष्यत्+सर्वम्+परिगृहीतम्) भूत वर्त्तमान और भविष्यत् इस सब काल का ग्रहण किया है (येन+यज्ञः+तायते) जिस मन की सहायता से अग्निष्टोमादि यज्ञ विस्तीर्ण होता है (तत्+मे+मनः+शिवसङ्कल्पम्+अस्तु) वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो। यज्ञ कैसाहै (सप्त+होता) जिसमें सात होता हैं।

वे सात होता कौनहैं? निस्सन्देह चक्षुरादि इन्द्रियही सप्त होता हैं। पश्चात् लोगों ने यजमान, होता, उद्गाता अध्वर्यु, ब्रह्मा, पोता, नेष्टा ये सात प्रकारके मनुष्य कल्पित किए। पश्चात् औरभी कल्पना बढ़ती गई। प्रत्येक वेदके चार२ ऋत्विक् बनाये गये। ऋग्वेदीय=होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत्। यजुर्वेदीय=अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता। सामवेदीय=उद्गाता, प्रस्तोता, सुब्रह्मण्य, प्रतिहर्ता। अथर्ववेदीय=ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, आग्नीध्र। अथर्ववेदीय=सात ऋत्विकोंके और भी नाम पाये जातेहैं वे ये हैं—सदस्य, पत्नीदीक्षिता, शमिता, गृहपति, अङ्गिरा, कैवर्त्त, चमसाध्वर्यु। एवं यजमान यजमानपत्नी इत्यादि संख्या बढ़ती गई।

॥ सप्त विप्र ॥

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः । सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ १ । ६२ । ४ ॥

(इन्द्र+शक्र) हे इन्द्र ! हे शक्र ! (सः) सुप्रसिद्ध वे आप (रवेण) शब्दमात्रसे (अद्रिम्+फलिगम्+वलम्) अद्रि, फलिग और वल इन तीन दुष्टों को (दरयः) विदीर्ण कर देते हैं । आप कैसेहैं (सप्त+विप्रैः) सात विप्रों से (स्वर्यैः) स्तूयमान हैं (स्तुभा+स्वर्यैः) पुनः आप उन सातों विप्रों को स्तुभ=अर्थात् स्तोत्रों से स्तूयमान हैं । वह स्तोत्र कैसा है (सुष्टुभा) जिस में सुन्दर २ स्तोत्र हैं पुनः (स्वरेण) वह स्तोत्र स्वर से संयुक्त है । वे विप्र कैसे हैं (नवग्वैः) नवग्व हैं पुनः (दशग्वैः) दशग्व हैं पुनः (सरण्युभिः) गमनशील हैं

व्याख्या=लोक में प्रसिद्ध है कि नवम अथवा दशम मास में मनुष्य उत्पन्न होता जो नवम मास में उत्पन्न हो उसका प्राण नवग्व और जो दशम मास में उत्पन्न हो उसका प्राण दशग्व कहाताहै क्योंकि रजोवीर्य्य के साथ ही प्राणों का भी बीज रहता है । अत एव ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णन आताहै कि अङ्गिरा ऋषि दो प्रकारकेहैं एक नवग्व दूसरे दशग्व । जो नव मास में यज्ञ समाप्त करते

ये नवग्व और जो दश मास में यज्ञ समाप्त करते थे दश-ग्व ॥ मातृगर्भ में नव दश मास निवासकरना ही नव-दश मास का यज्ञानुष्ठान करना है । ये कर्णद्वय, नयनद्वय, प्राणद्वय, और रसना सात ही मुख्य प्राण हैं । अतः ये सात विप्र कहे गए हैं । ये सरण्यु अर्थात् गमनवान् होने से सरण्यु कहाते हैं । इन्द्र नाम जीवात्मा का है यह मैंने बारम्बार कहा है । अद्रि, फलिग और वल ये तीनों नाम मेघ के हैं निघण्टु १ । १० । परन्तु यहां मेघ के समान आवरण करनेवाले अज्ञान के नाम हैं मेघ वा पर्वतवाचक जो शब्द हैं वे सर्वदा अज्ञानवाचक भी होते हैं । जैसे वृत्र, शम्बर आदि । जब सातों प्राण प्रसन्न होके जीवात्मा की स्तुति प्रार्थना करते हैं तब वह प्रबल्य जीव शारीरिक मानसिक और ऐन्द्रियिक अथवा आध्यात्मिक, आधिभौति-क, आधिदैविक अथवा शिरोरूप द्युलोकव्यापी, मध्यशरीर रूपान्तरिक्षव्यापी, अधोभागशरीररूपपृथिवीव्यापी दुःखों को विदीर्ण करता है । जीवात्मा की आज्ञा के अनुसार जब ये प्राण (इन्द्रिय) चलते रहते हैं : तब कहा जाता है कि ये प्राण जीवात्मा की स्तुति करते हैं अर्थात् यह आत्मा जितेन्द्रिय है । सप्तविप्र शब्द को लेके पिछली संस्कृतभाषा में अनेक रूपक बनते गए । विशेषरूप से यहां वि-चारना यह है कि वेदों के शब्द ले २ कर पश्चात् कितने इतिहास आख्यायिकाएं बनती गईं और वे मनुष्यों के यथार्थ इतिहास मानेगए यह अद्भुत बात है ।

सप्तसिन्धु ।

यो हत्वाऽहि मरिणात्सप्त सिंधून्यो गा उदाज-
दपधा वलस्य । यो अश्मनोरंतरग्निं जजान संवृ-
क्समत्सु स जनासइन्द्रः ॥ ऋग० २ । १२ । ३.

(यः + अहिम् + हत्वा + सप्त + सिंधून् अरिणात्) जो अहि को मार सात नदियों को बहने के लिये प्रेरित करता है (यः + वलस्य + अपधा + गाः उदाजत्) जो वल के अवरोध= रुकावट से गौओं को निकाल लेता है (यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान) जो दो प्रस्तरों के बीच में अग्नि को उत्पन्न करता है (समत्सु संवृक्) जो विविध संग्रामों में शत्रुओं के काटनेहारा होता है (जनासः सः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है ।

व्याख्या—अहि=आप, अज्ञान। वल=पाप, अज्ञान, अन्धकार। **गो**=इन्द्रिय। **अश्मा**=शरीररूप पर्वत। **इन्द्र**= जीवात्मा । **सप्तसिंधु**=नयन आदि सात इन्द्रिय । जब अज्ञानरूप अन्धकार छा जाता है तो कर्त्तव्याकर्त्तव्य भूल जाते हैं जिन इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य विचार करता है वे इन्द्रिय विचार से अलग हो जाते हैं । महामहादुष्कर्म्म में फंसकर जीवात्मा को कलङ्कित कर देते । जब इन्द्रियों की ऐसी दशा होजाती तब कहा जाता है कि अहि, वृत्र, शम्बर, नमुचि, धुनि, चुमुरि और वल आदि असुर सप्त नदियों को बहने नहीं देते, मानो इन सप्त नदियों को

चारों ओर से बांध रखते। नदीरूप गौओं को हरणकर लेजाते इत्यादि। पश्चात् देवों के कल्याणार्थ इन वृत्र आदि असुरों से तुमुल संग्राम कर उन को मार सप्त नदियों को इन्द्र खोल देता है। तब वे नदियां पुनः बहने लगती हैं। वे गायें इन्द्र की कृपाद्वारा कारागार से निकल आती हैं इत्यादि यहां इन्द्रियों की दुष्ट प्रवृत्तियों के ही नाम अहि, वृत्र आदि हैं। ये असुर नाम से पुकारे जाते हैं क्योंकि "असुषुप्राणेषु रमतेयः सोऽसुरः" जो सत्कर्म्मों कोत्याग दुष्कर्म्मों में प्रवृत्त हो केवल प्राणों के ही भरण पोषण में लगा रहता है वह असुर कहाता, दुष्टेन्द्रिय असुर और शिष्टेन्द्रिय देव कहाते इन्हीं दोनों का जो अहोरात्र तुमुल युद्ध होरहा है इसी का नाम देवासुर संग्राम है। शुद्ध जीवात्मा इन्द्र और दुष्ट जीवात्मा वृत्र है सो यह जीवात्मा ईश्वरोपासनरूप महायज्ञ करके परम बलिष्ठ होता और तब सब दुष्टताओं को छोड़ देता यही इसका महाविजय है इसी प्रकार का आशय आगे भी रहेगा—

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिंधून्। यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जना स इन्द्रः॥ ऋग् २। १२। १२॥

(यः सप्तरश्मिः) जो सप्तरश्मि नयनादि सात ज्योति वाला है (वृषभः) जो ज्ञान की वर्षा करनेहारा (तुविष्मान्) बलवान् (वज्रबाहुः) हाथ में वज्रधारी है वह,

(सप्त सिंधून् सर्त्तवे अमृजत्) नयनादि सात नदियों को बहने के लिये बनाता है (यः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम्) जो द्यु लोक की ओर आते हुए रौहिण को (अस्फुरत्) मारता है (जनासः सः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है ।

व्याख्या—इन्द्र=जीवात्मा। रौहिण=अज्ञान। द्यौ =द्यु लोक, प्रकाश, ज्ञान । ज्ञानरूप महाज्योति को ढांकने के लिये जब अज्ञान दौड़ता है तब जो जीवात्मा धर्मनिष्ठ बलिष्ठ और पापरूप असुरों के निपात के हेतु सदा हस्त में विवेकरूप महास्त्र रखता है वह उसको मार देता है अपने समीप कदापि अज्ञान को नहीं आने देता । और ऐसे जीवात्मा की सातों इन्द्रियरूप नदियां अच्छे प्रकार अपने अपने विषयों में निरुपद्रव रूप से प्रवाहित होती रहती हैं।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः। अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ ऋग् १ । ३२ । १२ ॥

(इन्द्र यद् एकः देवः) हे इन्द्र ! जब एक देव अर्थात् मदकारी मदोन्मत्त वृत्र नाम का एक असुर (सृके त्वा प्रत्यहन्) आप से वज्र छीन लेने के हेतु आप के ऊपर प्रहार करता है तब आप (अश्व्यः वारः अभवः) अश्व (घोड़े) के समान बलिष्ठ होते हैं (शूर गाः सोमम् अजयः) हे शूर ! अवरुद्ध गौवों को और सोम को जीत लेते हैं पश्चात् (सप्त सिंधून् अवासृजः) सप्त नदियों को बहाते हैं ॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्। नव च यन्नवतिश्च स्रवंतीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ ऋग् १ । ३२ । १४ ॥

(इन्द्र जघ्नुषः ते हृदि यद् भीः अगच्छत्) हे इन्द्र! शत्रु के हनन कर्त्ता आपके हृदय में जो भय आया है इसका क्या कारण (कम् अहेः यातारम् अपश्यः) अपने को छोड़ किस अन्य देव को अहि के मारनेहारे देखते हैं। आप को छोड़ कौन दूसरा अहि को मार सकता अतः आप क्यों डरते हैं? (भीतः श्येनः न) भयभीत श्येन पक्षी के सदृश आप (यत् नव च नवतिञ्च) जो नौ ९ और ९० (स्रवन्तीः रजांसि अतरः) बहती हुई नदियों के पार उतर गए हैं।

समीक्षा=यहां मैंने संक्षेप से दिखलाया कि वृत्र आदि असुरों को मार सप्त सिन्धुओं को इन्द्र प्रवाहित करता है। पृथवी पर शतशः नदियां हैं तब सप्त पद बार २ क्यों आते हैं? इन से सिद्ध है कि यह नियत संख्या किसी नियत संख्या ही की सूचना देनेहारी होसकती अन्य की नहीं वे नियत सात शिरस्थ नयनादिक ही हैं अन्य नहीं इसहा नियत सातों को ये वेदमंत्र दिखला रहे हैं पुनः एक ऋचा में देखते हैं कि यह इन्द्र भय खारहा है। उपासक कहता है कि इन्द्र! तू मत भय कर तू ९९ नदियों को पार कर आया है अब कोई चिन्ता की वात नहीं इत्यादि। वे ९९ कौन हैं? समाधान-पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, और

एक मन ये ११ इन्द्रिय होते हैं उत्तम, मध्यम, अधम, भेद में ये ३३ होते हैं। ये ही ३३ देव हैं । जिस हेतु लोक में देखते हैं कि शिष्टों की अपेक्षा दुष्ट अधिक हैं। अतः वेद भगवान् कहते हैं कि देवों की संख्या की अपेक्षा असुरगण त्रिगुणित अधिक हैं अर्थात् ३३×३=९९ हैं इसी कारण इन्द्र द्विनयन, एकशिरस्क, किन्तु वृत्र षडक्ष (छःनेत्रवाला) और त्रिमूर्धा कहाता है अर्थात् इन्द्र की अपेक्षा वृत्र त्रिगुण है। अतः देवों की ३३ तैंतीस संख्या कि अपेक्षा त्रिगुण ३×३३=९९ निन्यानवे असुर हैं। ये ही निन्यानवें पापरूप नदियां हैं इनको जब तक जीवात्मा लांघता नहीं तबतक भयभीत होता रहता यहां उपासक अपने आत्मा को समझाता है अब चिन्ता की कोई बात नहीं तू इन ९९ नदियों का पार उतरआया । यहां यह ९९ संख्या भी नियत संख्या को ही सूचित कररही है। ये ३३ तैंतीस इन्द्रिय जब दुष्टकर्मों में प्रवृत रहते हैं तब ये त्रिगुणित ९९ असुर कहाते हैं। ये अगाध दुस्तर ९९ नदियां हैं। इससे भी सिद्ध है कि यह सब वर्णन इसी शरीर का है इसको छोड़ बाह्य जगत में ७ अथवा ९९ नदियों को गवेषणा करनी सर्वथा अवैदिक अर्थ और अज्ञानता की बात है।

॥ सप्त नदियां और यश ॥

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः । अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ऋग् १।१०२।२॥

(सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति) सात नदियां इसके महान् यश को धारण करती हैं (द्यावाक्षामा पृथिवी वपुः दर्शतम्) द्यु लोक और यह विस्तीर्ण पृथिवी उसका शरीर दिखला रही है (अस्मे श्रद्धे) हमलोगों की श्रद्धा के निमित्त (इन्द्र अभिचक्षे सूर्याचन्द्रमसा) हे इन्द्र! प्रत्यक्षतया ये सूर्य और चन्द्र (कम् वितर्तुरम् चरतः)सुखपूर्वक निरन्तर विचरण कररहे हैं। जो सात नदियां इस परमात्मा की महती कीर्ति को धारण किये हुए हैं वे कोई विलक्षण होनी चाहियें वे सात नदियां निस्सन्देह ये सप्त इन्द्रिय हैं येही भगवान् के परम यश को प्रख्यात कररहे हैं॥

य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वाऽऽर्यात् सप्त सिन्धुषु।
वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ ऋग् ८।२४।२७॥

(यः अंहसः ऋक्षात् मुचत्) जो इन्द्र शुद्ध जीवात्मा पापरूपी रीछ से उपासक को छुड़ाता है (यः वा सप्त सिन्धुषु आर्यात्) अर्थात् जो सात नदियों के तटपर धन भेजता है (तुविनृम्ण) हे बहुधन इन्द्र! वह आप (दासस्य वधः नीनमः) क्षयकरनेहारे दुष्ट असुरों के लिये हनन साधक आयुध को नमित कीजिये। यही नयन आदि सप्तेन्द्रिय सप्तसिंधु हैं शुद्ध जीवात्मा पाप से उपासक को छुड़ा इन्द्रियरूप सप्त सिन्धुओं को विज्ञानरूप विविध धन भेजता है।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धो रधि स्वरे ॥ ऋग् । ८ ।७२ । ७ ॥

(अधिस्वरे सिन्धोः तीर्थे) शब्दायमान सिन्धु के तीर्थ पर (सप्त एकाम् दुहन्ति) एक गौ को सात जन दुहते (पञ्च द्वा सृजतः) पांचों को दो कार्य में लगा रहे हैं ।

व्याख्या=वाणी वा विद्या एक गौ है । सप्त=नयन आदि सप्त इन्द्रिय । पञ्च=पांच ज्ञानेन्द्रिय स्थान-भेद से सात गिनती होती है परन्तु ज्ञानभेद से पांच इन्द्रिय हैं। दोनों नयन से एक दर्शनक्रिया। दोनों कर्णों से एक श्रवणक्रिया । दोनों घ्राणों से एक सूंघने की क्रिया जिह्वा से एक स्वाद क्रिया ।त्वचा से एक स्पर्शक्रिया । येही पंच ज्ञानेन्द्रिय हैं। दो=मन और जीव ये दोनों पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को कार्य में लगाये हुए रहते हैं । सिन्धु=बहने हारा यह शरीर । इस देह के अभ्यन्तर सदा शब्द होता रहता है । इस शब्दायमान शरीररूप सिन्धु के तट पर ये सप्तेन्द्रिय विद्यारूपा गौ को दुहा करत हैं। मन और जीवात्मा दोनों इनको कार्य्य में लगाए हुये रहते हैं। यही इसका भाव है । वेदजिज्ञासु पुरुषो ! यहां यह वार-वार विचारणीय है कि वैदिक नियत संख्या किसी नियत संख्या का ही वर्णन करेगी ॥

सप्त परिधि और पुरुष पशु—

सप्तस्याऽऽसन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । दे

वा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।
यजुः ॥३१ । १५ ॥

(यज्ञम् तन्वानाः) यज्ञ को करते हुए (यद्) जब (देवाः) देव (पुरुषम् पशुम् अबध्नन्) पुरुष पशु को बांधते हैं तब (अस्य सप्त परिधयः आसन्) इस यज्ञ के सात परिधि होते हैं और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) त्रिगुणित सप्त अर्थात् २१ समिधाएं होती हैं ॥

व्याख्या—अब इस ऋचा के अर्थ में भी किञ्चित् सन्देह न रहेगा। पुरुषपशु—प्रत्येक शरीर में रहनेहारा जीवात्मा ही यहां पुरुषपशु है, नयन आदि सात इन्द्रिय यहां परिधि हैं। चारों तरफ के घेरे का नाम परिधि है जैसे कभी २ सूर्य और चन्द्रमा के चारों तरफ गोलाकार रेखा बनी हुई प्रतीत होती है। इनहीं सातों के उत्तम, मध्यम, और अधम भेद से २१ प्रकार के जो विषय हैं वेही यहां २१ समिधाएं हैं वेदों में भूरि २ ऐसा वर्णन आता है कि वत्स-के समान यह जीव रस्सी में बन्धा हुआ है। इसके ऊपर, मध्य और नीचे तीन स्थानों में फन्दे लगे हुए हैं इत्यादि। जब इन्द्रियों का अधिष्ठातृरूप देव इस जगत् में आके शुभा-शुभ कर्मरूप यज्ञ करना चाहता है तब जीवात्मा के चारों तरफ से घेरनेहारे येही सप्तेन्द्रिय सात परिधि होते हैं। और इनको विषय वासनाएं मानो इनके भोजन होते हैं। इस प्रकार जीवात्मरूप पशु को बांध के देवगण यज्ञ करते हैं। ऐ वैदिक पुरुषो ! ऐसे २ हो वर्णन देख के यज्ञों में भी

भैंस, छाग, मेष, आदि पशुओं को बांध मरवानेलगे। यह कैसी शोकजनक अवनति हुई। जो अध्यात्मपरक यज्ञ था वह आज घृणित द्रव्यमय होगया

गङ्गा यमुना आदि सप्त नदियां ॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋग् । १०।७५। ५ ॥

(गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि परुष्णि) हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे सरस्वति ! हे शुतुद्रि ! हे परुष्णि ! (मे इमम् स्तोमम् आसचत) मेरे इस स्तोत्र की सब प्रकार से सेवा करो ! (मरुद्वृधे आर्जीकीये) हे मरुद्वृधे ! हे आर्जीकीये (असिक्न्या वितस्तया सुषोमया आशृणुहि) असिक्नी, वितस्ता, और सुषोमा के साथ मेरे स्तोम को सुनो ॥

व्याख्या—गङ्गा— गमन करनेहारी। यमुना—चलनेहारी। सरस्वती—जलपूर्णा। शुतुद्री—शीघ्र दौड़नेहारी। परुष्णी—कुटिलगामिनी। मरुद्वृधा—वायुसेवढ़नेहारी आर्जीकीया—ऋजुगामिनी। असिक्नी—अशुक्ला, तामसी। वितस्ता—विवृद्धा विस्तीर्णा। सुसोमा—परम शान्तिप्रद, सौम्यगुणयुक्ता। प्राचीनों ने इनकी इसी प्रकार निरुक्ति की है। सप्त नदी वा सप्तसिंधु आदि पद वेदों में बहुत आये हैं इस पुस्तक में भी दो चार उदाहरण दिए गए हैं यहां नदीवाचक सात और तीन नाम भी पाए जाते हैं:-

गङ्गा २–यमुना ३–सरस्वती ४-शुतुद्री ५--परुष्णी ६- मरुद्वृधा और ७--आर्जीकीया ये सातों नाम सम्बोधनयुक्त और १--असिक्नी २--वितस्ता और ३–सुषोमा ये तीनों पद तृतीयान्तयुक्त आये हैं। जहां २ सप्त सिन्धु आदि पद हैं वहां २ सायणादि भाष्यकार गङ्गादि सप्त नदियां अर्थ करते हैं। परन्तु मैंने पूर्व में अनेक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि सप्त सिन्धु पद से नयनादि सप्तेन्द्रियों का ग्रहण है । यहां उन सातों के विशेष नाम दिए हुए हैं। यही विशेषता है। अब जो असिक्नी, वितस्ता और सुषोमा ये तीन नाम हैं। वे उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीसूचक हैं वेदों की इस शैली पर सदा ध्यान देना चाहिये कि वेद भगवान् सामान्य वाचक शब्द कहते २ नित्य व्यक्तिवाचक शब्द भी कह देते हैं और उनमें चेतनत्व का आरोप करके चेतन व्यक्तिवत् वर्णन करते हैं। वैदिक इतिहासार्थ निर्णय नाम के ग्रंथ में यह बात विस्तृतरूपसे वर्णित है। जैसे नयन आदिकों को वे सप्त ऋषि कहते हैं अब कहीं इनके पृथक् २ सात नाम रखकर भी वर्णन करेंगे। इसी प्रकार ३३ देव, पञ्च मानव, सप्त प्राण, सप्त लोक आदि। अब यहां यह भी स्मरणीय बात है कि जब इन्द्रियों को लोक कहेंगे तब तत्सदृश ही नाम भी रक्खेंगे जैसे भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। जब इन्हें असुर कहेंगे तब शम्बर, नमुचि, धुनि, चुमुरि, बल, अहि, वृत्र

आदि नाम देवेंगे। जब इन्हें पशु कहेंगे तब गो, मेष, अज, वृक, अश्व, सिंह, व्याघ्र आदि । इसी प्रकार जब इनको नदी नाम से पुकारेंगे तब गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, मरुद्वृधा और आर्जीकीया कहेंगे । पुनः यहां सातही नाम क्यों ? अतः सिद्ध है कि यह सप्तेन्द्रिय का वर्णन है बाह्य नदियों का नहीं ।

प्रश्न——आपने जो अर्थ किया है वह ठीक है किन्तु प्रथम गङ्गा आदि नदियों को वैदिक कवि देख तब ऐसा वर्णन किये हों ऐसा संभव है। समाधान–नहीं। वेदों में अनित्य और एकदेशी पदार्थ का वर्णन नहीं आता। वेदों में आकृति का वर्णन है व्यक्ति का नहीं। इस विषय को वैदिकइतिहासार्थ नि० में देखिये। यह संभव नहीं कि वसिष्ठ विश्वामित्र आदिकों को देख तब नयनादिकों को वसिष्ठादि कहने लगे हों किन्तु वेदों के नामों को लेकर पीछे ये नाम सब मनुष्यों के रक्खे गये हैं इसी प्रकार नदी प्रभृतियों के नाम भी वैदिक नामों पर रक्खे गए। शङ्का–इसऋचा में असिक्नी, वितस्ता और सुसोमा ये तीन नाम भी तो आए हैं। पुनः सातही नदियां कैसे कही जातीं। समाधान–ये तीनों श्रेणीवाचक शब्द हैं। पृथक् २ किसी नदीका नाम नहीं क्योंकि असिक्नीशब्दार्थ अशुक्ला अर्थात् कृष्णा, तामसी। वितस्ता शब्दार्थ विवृद्धा राजसी और सुसोमाशब्दार्थ सुसौम्या सात्त्विकी है अर्थात् ये सप्तेन्द्रिय उत्तम, मध्यम और अधम भेद से २१ प्रकार के हैं। इसी कारण अन्यान्य

ऋचाओं में ३×७=२१ नदियों की चर्चा देखते हैं यथा—
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपः ऋग् १०।६४।८। प्र
सप्त सप्त त्रेधाहि चक्रमुः। ऋग् १०।७५।१।

नदी सम्बन्धी दो घटनाएं।

वसिष्ठ और नदियां—मैं अब नदियों के सम्बन्ध में केवल दो ऋषियोंकी घटनाएं दिखलाताहूं इससे पता लगेगाकि यह केवल रूपकालङ्कारमात्राहै। निरुक्त दैवतकाण्ड अ० ३।२६ में यास्क कहते हैं। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः।...पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्विपाडित्युच्यते। आर्जीकीया को विपाट् कहतेहैं क्योंकि मरनेकी इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पाश (फांस) इसी में टूटे थे ॥ विपाट् को पौराणिक भाषा में विपाशा नदी भी कहते हैं। महाभारत के आदिपर्व में विश्वामित्र और वसिष्ठ की संग्रामसम्बन्धी अतिविचित्र कथा लिखी हुई है। गौ के कारण इन दोनों में महाकलह उत्पन्न हुआ। एक समयकी बातहै कि वसिष्ठके प्रायः सब सन्तानों को विश्वामित्र ने मरवा दिया। इस शोक से वसिष्ठजी अपने शरीर को पाशों से खूब मज़बूत बांध किसी एक नदी में मरणार्थ गिरगये वह नदी ऋषिके सर्व पाशों को तोड़ स्थल में ले आई। अपने में उन को डूबने नहीं दिया। यह विचित्र लीला देख उस नदी का नाम विपाशा रख ऋषि आगे चले। पुनः मरने की इच्छा से किसी दूसरी नदी में जागिरे। वह नदी भी

शतमुख हो इधरउधर भाग गई ! ऋषि को अपने में न मरने दिया ! अतः उस नदी का नाम शतद्रु हुआ ! प्रमाण--

ततः पाशैस्तदात्मानं गाढं बध्वा महामुनिः । तस्या जले महानद्या निममज्ज सुदुःखितः ॥ अथ छित्वा नदी पाशांस्तस्यारिबलसूदन । स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत् ॥ ...सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा । शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता । महा० आदि पर्व । अ० १७६ ॥

समीक्षा—प्रथम यहां देखते हैं कि वेद में शुतुद्री शब्द है उसको महाभारत ने शतद्रु बनाया। अब वसिष्ठ शरीर को दृढ़तर बांध नदी में कूद पड़ते किन्तु नदी इन के पाशों को तोड़ तट पर ले आती । इसी प्रकार मुमूर्षु ऋषि को देख नदी भागजाती । इसका क्या भाव है ? क्या नदी कोई चेतन है जो इस तरह समझती ? । नहीं । नदी चेतन नहीं । नदी ऐसा काम नहीं कर सकती । यह केवल आलङ्कारिक वर्णन है । ईश्वरोपाशक का नाम यहां वसिष्ठ है। ये इन्द्रिय ही नदियां है । उत्तम बुद्धि ही यहां नन्दिनी धेनु है । विश्वामित्र--जगत् का अमित्र, शत्रु, अविवेक, अज्ञान, लोभ, मोह, आदि विश्वामित्र हैं (यहां ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य्य नहीं है । ऋषि अर्थ में विश्वमित्र को ही विश्वामित्र कहते हैं) ईश्वरभक्तों को प्रथम अविद्या, अ-

काम, लोभ, मोह आदि बहुत तंग करते हैं। इन की गो-रूपा बुद्धि को हरण करना चाहते हैं। कोई उपासक बहुत विघ्न देख आत्मघात करना चाहता। विवेक मना करता है कि ऐसा मत करो। मानो, सब इन्द्रिय समझाते हैं कि तुम चिन्ता मत करो। अब हम सब तुम्हें क्लेशित न करेंगे तुम अब सिद्ध होगए। समाहित हो ईश्वर की ओर जाओ। उपासक घबराता है और इन्द्रिय समझाते हैं। धीरे २ इन्द्रिय वश में आते जाते हैं। इसी घटना को विश्वामित्र और वसिष्ठ दो नाम मानकर कवि वर्णन करताहै। इस से भी सिद्ध है कि यह किसी बाह्य नदी का वर्णन नहीं। क्या ऐसी घटनाएं आप लोगों के जीवन में नहीं होती॥

नदी और विश्वामित्र—यास्क शौनक आदि ऐसी कथा कहते आये हैं कि एक समय पैजवन सुदास राजा के पुरोहित विश्वामित्र हुए। वहां से बहुत धन लेकर विपाट् (विपाशा) और शुतुद्री के संगम पर आये। इन के पीछे २ लूटने को डाकू भी पहुंचे। विश्वामित्र इस असमंजस को देख शीघ्र पार उतरने के लिये नदियों को पुकार २ कहने लगे। हे नदियो! तुम गाधा अर्थात् पार उतरने योग्य हो जावो इत्यादि। इस समय विश्वामित्र और नदियों में जो संवाद हुआ है वह कई एक ऋचाओं में वर्णित है कुछ ऋचाएं मैं यहां उद्धृत करता हूं॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः । न वर्त्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ३ । ३३ । ४ ॥

(एना पयसा पिन्वमानाः) इस धारा से सींचती हुई (वयम् देवकृतम् योनिम् अनु चरन्तीः) हम नदियां देवकृत स्थान को जारही हैं (सर्गतक्तः प्रसवः न वर्त्तवै) उन हम सब का आदि काल से प्रवृत्त जो उद्योग है वह निवृत्त के लिये नहीं है अर्थात् हम नदियां कदापि ठहर नहीं सकतीं । तब (किंयुः विप्रः नद्यः जोहवीति) किस इच्छा से यह विप्र नदियों को पुकार रहा है ॥ ४ ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्त्तमेवैः । प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ३ । ३३ । ५ ॥

विश्वामित्र कहते हैं कि (ऋतावरीः) हे जलपरिपूर्ण नदियो ! (मे सोम्याय वचसे) मेरे सुन्दर वचन के लिये (एवैः मुहूर्त्तम् उपरमध्वम्) अपने गमन से मुहूर्त मात्र ठहर जावें (बृहती मनीषा अवस्युः) बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति कर के रक्षा चाहने हारा (कुशिकस्य सूनुः) यह कुशिक का पुत्र मैं (सिन्धुम् अच्छा प्र अह्वे) सिन्धु को जोर से पुकार रहा हूं ॥

इन्द्रोऽस्माँ अरदद् वज्रबाहु रपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् । देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं

प्रसवे याम उर्वीः ।६। प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म्म यदहिं विवृश्चत् । वि वज्रेण परिषदो जघानाऽऽयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ७ ॥

नदियां कहती हैं हे विश्वामित्र ! (वज्रबाहुः इन्द्रः अस्मान् अरदद्) वज्रबाहु इन्द्रने हमको खोद कर तैयार किया है (नदीनाम् परिधिम् वृत्रम् अपाहन्) नदियोंके चारों तरफ घेरे हुए वृत्र का इन्द्र ने हनन किया (सविता सुपाणिः देवः अनयत्) वह प्रेरक सुपाणि इन्द्रदेव ही हमको लेकर आया है अर्थात् वृत्रको मार इन्द्र हमारी रक्षा किया करता है (तस्य प्रसवे उर्वीः वयम् यामः) उसी की आज्ञा के ऊपर हम जलसे पूर्ण हो जारही हैं। हे कुशिकपुत्र विश्वामित्र ! तब आपकी आज्ञा मानकर कैसे ठहरें (इन्द्रस्य तद् वीर्यम् कर्म्म शश्वधा प्रवाच्यम्) इन्द्र के उस वीर्य और कर्म्म को सदा कहना चाहिये (यद् अहिम् विवृश्चत्) जो यह इन्द्र अहि को काटा करता है (वज्रेण परिषदः विजघान) और जो वज्र से चारों तरफ बैठे हुए प्रतिबन्धकारियों का हनन किया करता है जिसके मरने से (अयनम् इच्छमानाः आपः आयन्) अपने स्थान को चाहनेहारी ये नदियां सुख से जारही हैं ।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन । नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

पुनः विश्वामित्र कहते हैं कि (स्वसारः सिन्धवः) ऐ भगिनी नदियो ! (कारवे) स्तोत्र करनेहारे मेरे वचन को (ओ + सु + शृणोत) अच्छे प्रकार श्रवण कीजिये (दूरात् अनसा रथेन वः ययौ) दूर प्रदेश से मैं शकट और रथ के द्वारा आपके निकट आया हूं इस कारण (नि + सु + नमध्वम्) आप सब तरह से नम्र होजांय (सुपाराः भवत) सुन्दर पार होने योग होवें (स्रोत्याभिः अधोअक्षाः)धराओं से पहिये के नीचे हो जांय ॥ ९ ॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन । नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥

नदियां कहती हैं (कारो) हे स्तोत्रकर्त्ता ऋषे ! (ते वचांसि आ शृणवाम) तेरे वचनों को अब हम सब अच्छी तरह सुन रही हैं । (अनसा रथेन ययाथ) शकट और रथ के द्वारा चले जाइये क्योंकि आप (दूराद्) दूर से आए हुए हैं (ते नि नंसै) आपके लिये हम नीचे हो जाती हैं (पीप्याना इव योषा) जैसे पुत्र को दूध पिलाती हुई माता झुक जाती है (कन्या मर्याय इव शश्वचै) जैसे कन्या पिता भ्राता आदि मनुष्य के निकट नम्र होती है तद्वत् (ते) आपके लिये हम नदियां झुक जाती हैं । आप पार उतर जांय ॥ १० ॥

व्याख्या--यह संवाद अति मनोहर है । एक ओर न-

दियां कहती हैं कि हम सब इन्द्रकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगी। हमारे प्रतिबन्धक वृत्र और अहि को मार के यह देव हमको संकट से बचा लेता है इसके कर्म अद्भुत हैं। इसकी कृपा से स्वतन्त्र हो स्वेच्छानुसार हम अपने नियोग कर रही हैं। यह कौन विप्र है जो हमें रोकके कुछ सुनाना चाहता है हमें इतनी कब छुट्टी कि अपनी गति को रोक इसकी बात सुनें। इत्यादि। दूसरी ओर ऋषि विश्वामित्र जोरसे चिल्ला के कहते हैं ऐ नदियो! आप मेरी स्वसाएं अर्थात् बहिनें हैं। केवल एक मुहूर्त ठहरें। मेरे इस सुन्दर यज्ञिय वचन को सुन लेवें। मैं बहुत दूरसे आया हूं। अब यदि आप कुछ नम्र न होंगी इसीतरह आगाधा रहेंगी तोमैंनष्ट होजाऊंगा। देखिये बहिनो! मैं कारु अर्थात् स्तोत्रकर्त्ता हूं आप को स्तुति सुनाया करता हूं मैं भी कुशिक का पुत्र हूं इससम्बन्ध को देख के भी मुझ पर दया कीजिये। ऐसे विलपते हुए ऋषिको देख नदियों को दया आती है और परितुष्ट होके कहती हैं कि हे ऋषे! जाइये पार होजाइये आप के लिये हम गाधा हो जाती हैं इसके आगे यह कथा है कि ऋषि सब को प्रथम पार उतार नदियों को धन्यवाद दे स्वयं भी पार उतर जाते हैं। इस संवाद का क्या आशय है? क्या सचमुच ऋषि से नदियां बोली।? क्या विश्वामित्र पागलथे जो जड़ नदियों को पुकार२ अपनी बातें सुनाने लगे, या नदियां पूर्वकाल में मनुष्यवत् बोला करती थीं। ऐसी कथा से वेद का क्या आशय है? समाधान--इसका भाव

विस्पष्ट है न नदियां चेतन थीं न यह संवाद किन्हीं विशेष नदियों और ऋषि का है। यहभी इसी इन्द्रियोंका वर्णन है इन्द्र=जीवात्मा। विश्वामित्र=विश्वमित्र अपने और प्राणीमात्रका जो मित्र हो वह विश्वामित्र। कुशिक— प्रकाशकर्त्ता परमात्मा वा जीव ॥ अब आशय इसका यह हुआ कि सर्वहितकारी जो उपासकहै वह जब साधनसम्पन्न होता है तब बीच२ में अनेक विघ्न उपस्थित होने लगते हैं उस समय उपासक घबरा जाताहै। विघ्न करनेहारे कौन हैं? निस्सन्देह ये इन्द्रियगणही हैं। जैसे नदियां जलपरिपूर्ण हो अपनी विभूतियां दिखलाती हुई बहती हैं वैसे विषय वासनारूप जलोंसे परिपूर्ण हो ये इन्द्रियगण इधर उधर बराबर दौड़तेरहतेहैं। उससमय यह उपासक कहताहै कि ऐ इन्द्रियो! मेरा वचन सुनो तुम मुझे पार उतारदो। तुम ऐसे उद्धत मत होओ। नम्र हो जाओ मैं भी उसी परमात्मा वा जीवात्मा का पुत्र हूं। मुझे तुम क्यों क्लेश देते हो। इस प्रकार जो उपासक सदा इन्द्रियों को समझाता रहता निःसन्देह उसके लिये ये इन्द्रियगण नम्र हो जाते। वह उपासक इस शरीररूप रथ पर चढ़ कर पार उतर जाता। यदि कहा जाय कि इन्द्रियगण भी तो जड़ हैं उनको ही समझानेसे कौन लाभ होसक्ता? समाधान —इन्द्रियों को अथवा मनको समझाना तो अपनेको ही समझाना है यह विचारकर देखिये: यह मानव स्वभाव है कि होनहार मनुष्य अपने आप को सदा समझाता

सुभाताहै । यह इन्द्रियोंका ही वर्णन है क्योंकि पूर्व में कहा गयाहै कि वृत्र अहि आदि असुरोंको मार इन्द्र नदियोंको बहनेके लिये प्रेरित करताहै इत्यादि । यहां वे ही नदियां कहतीहैं कि हम इन्द्रकी आज्ञाको मानतीहैं उसी की कीर्त्ति गातीहैं। वह वृत्रको मार हमारी रक्षा करता है इत्यादि । अनेक समानताओं से सिद्धहै कि यह वर्णन भी इन्द्रियोंका है। पश्चात् कुशिकस्य सूनुः विश्वामित्रआदि पद देख ऐतिहासिकोंने विविध गाथाएं कल्पित की हैं। मामतेय ऋषि दीर्घतमा की भी ऐसीही आख्यायिका है ॥

गङ्गा की उत्पत्ति—यह गाथा भी परार्थसूचक है । सगर=जलयुक्त आकाश का नामहै निघण्टु १ । ३ । पृथिवी पर की छोटी २ नदियां सगरपुत्र हैं । सूर्य का नाम भगीरथ है । तेजोरूप महान् ऐश्वर्य्ययुक्त जिस का रथ हो । वेदों में आकाश पुत्र सूर्य माना गया है । कपिल अग्नि का नाम है अर्थात् ग्रीष्मऋतु ही कपिल है अतएव पुराणों में कपिल को अग्न्यवतार भी मानते हैं । पर्जन्य (मेघ) देव का नाम रुद्र है । ग्रीष्मऋतुरूप कपिल जब सगर पुत्रों को दग्ध कर देता तब सगर शोकसंतप्त हो मानो, पुत्रों के उद्धारके लिये उपाय सोचताहै । तब सगर वंशोद्भव भगीरथ (सूर्य) पर्जन्य देव को प्रसन्न कर अर्थात् मेघों को बनाकर महती जलधारारूप गङ्गा को पृथिवी पर छोड़ता है पुनः नदियां जलों से भर जाती हैं । यही सगरपुत्रों का उद्धार है । मानो,

सगर अर्थात् आकाश का पुत्र यह पृथिवीस्थ समुद्र है अतः इसको सागर कहते हैं (सगरस्य अपत्यम्) त्रिदेवनिर्णय में विस्तार से वर्णित कथा को देखिये। क्या ही आश्चर्य की बात है क्या था और अब क्या होगया। हे भगवन्? इस महापरिवर्त्तन के कारण भी तो आप ही हैं!

सप्त लोक और सप्त पाताल—यह जो केवल चौदह खण्डयुक्त शरीर का विवरण था अब चौदहलोक बन गए। हजारों श्लोकों में इनका पुराण वर्णन करते हैं। विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में बहुत विस्तार से सप्त लोक की चर्चा आई है। पृथिवीसे लेकर उपरिष्ठ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एवं भूमि के नीचे सम्पूर्ण प्रदेश को सात २ भागों में बांटते हैं। ऊपर के भागों के क्रम से ये नाम हैं—भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् और नीचे के भाग अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महातल, सुतल और पाताल। परन्तु भागवत के अनुसार अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल रसातल, पाताल कहाते हैं। ये भूः भुवः इत्यादि लोक यही नयनादि सप्तेन्द्रिय हैं। अभीतक सन्ध्या के प्राणायाम काल में ये सातों पढ़े जाते हैं। प्राणों के आयाम=व्यायाम को प्राणायाम कहते हैं। प्राण नाम इन्द्रियों का है यह प्रसिद्ध है। इन्हीं सातों इन्द्रियों को योग्य बनाने के लिये प्राणायाम किया जाता है। प्राणायाम से ये सप्तक वशीभूत हो अपने योग्य कार्य में लगते हैं अन्यथा उच्छृंखल हो उपासक को भ्रष्ट करते हैं। विचारने की बात है कि प्राणायाम काल में

येसात प्राण क्यों पढ़े जाते। इससे सिद्ध है कि यह सप्तेन्द्रियमात्र का वर्णन है। ये ईश्वर के नाम भी हैं। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए इन सातों को अपने वश में लावें यही प्राणायाम का उद्देश है। अब जो नीचे सप्त लोक माने जाते हैं वे दो हस्त, दो चरण, मलेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय और गर्दनसे लेकर कटिपर्यन्त एक भाग ये ही सात हैं। इसीका नाम चतुर्दश भुवनहै। अन्य चतुर्दश भुवन कोई नहीं। जिज्ञासुपुरुषो ! नियत संख्यात पदार्थ की ओर आइये। अनियत की ओर मत जाइये। शरीर में ये चतुर्दश स्थान नियत हैं किन्तु इस विश्व में चतुर्दश स्थान कोई नियत नहीं। इसमें अनन्त लोक, अनन्त भुवन हैं। इस असीम जगत् को चतुर्दश ही भागों में कैसे विभक्त कर सकते। अतः शरीरस्थ दो नयन, दो कर्ण दो घ्राण, एक मुख ये ऊपरके सप्तलोक और दो हस्त, दो चरण, एक गुदा, एक मेढ़ और एक मध्य शरीर ये सप्त अधःस्थित लोक हैं। यह शरीर ही सुमेरु अर्थात् शोभन प्रकार से मरनेहारा पर्वत है इसी के शिखर पर इधर उधर सब भुवन हैं। इसी सुमेरु नामधारी शरीरके चारों तरफ नयनाधिष्ठाता सूर्य,मनोऽधिष्ठाता चन्द्रमा, कर्णाधिष्ठाता वायु आदि सब देव परिक्रमा कर रहे हैं। इसी को अच्छे प्रकार जानने से सर्वलाभ होता है यह कवि का भाव है। जो इस बाह्य जगत् में १४ भुवन खोजते हैं वे निस्सन्देह अज्ञानी हैं वे संस्कृत साहित्य से सर्वथा विमुख हैं। पुराण कहते हैं—

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च। सत्यलोकश्च सप्तैते लोका उपरि कीर्त्तिताः॥ पुनः कहतेहैं जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर ये सप्त द्वीप हैं। लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध और जल इन सातों पदार्थों का एक २ सागर है अर्थात् सातों द्वीपों के चारों तरफ़ सात सागर हैं। इसी प्रकार सप्त पर्वत, सप्त नदियां, सप्त गङ्गाएं इत्यादि अनेक सप्तक पुराण गातेहैं। सुमेरु को मध्य में मानते हैं " इह हि मेरुगिरिः किल मध्यगः कनकरत्नमय स्त्रिदशालयः" यदि पौराणिकों से पूछा जाय कि वे सप्त लोक, सप्त पाताल वा सप्त पर्वत, वा सप्त सागर आदि सप्तकगण कहां हैं तो वे कुछ नहीं समाधान करसकते क्योंकि वाह्य जगत् का वर्णन यह नहीं। इसी शरीरका सुमेरु नाम रख इस पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना दिखलाई गई है। पुराणों के सहस्रों श्लोक इसी भावको दिखलातेहैं। किन्तु अज्ञानी जन नहीं समझते।

सप्त नरक—दुष्कर्म्म महामहापातकों के करने से येही सप्तेन्द्रिय सप्त नरक बनजाते हैं। धीरे२ पश्चात् सप्त नरक स्थान इस शरीर से पृथक् कल्पित हुए "स्मरन्ति च॥ अपिच सप्त १५। वेदान्तसूत्र अ०३। पा० १। इन सूत्रों का अर्थ शङ्कराचार्य्य करहैं कि व्यासादिकोंकी स्मृतियों में रौरव आदि सप्तनरक उक्तहैं। पीछेउत्तममध्यमऔर अधम भेद से ७×३=२१ नरक माने गये, यथा—"तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति" भा० ५। २६॥ भागवत

कहता है कि कोई २१ नरक गिनते हैं वे ये हैं १-तामिस्र २-अन्धतामिस्र, ३—रौरव, ४—महारौरव, ५—कुंभीपाक, ६-कालसूत्र, ७-असिपत्रवन, ८-सूकरमुख, ९—अन्धकूप, १०-कृमिभोजन, ११-संदंश, १२ तप्तमूर्ति, १३-वज्रकण्टक, शाल्मलि, १४—वैतरणी, १५—पूयोद, १६—प्राणरोध, १७ विशसन, १८-लालाभक्ष, १९ सारमेयादन, २०—अवीचि, २१-अयःपान। वे कहते हैं कि वहां यमराज चित्रगुप्त के साथ विराजमान हैं इत्यादि। परन्तु यह भी शरीर का ही वर्णन है। अहोरात्ररूप महाकाल ही यम है क्योंकि पुराणोंमें कहा गयाहै कि सूर्यका पुत्र यमहै। निःसन्देह, अहोरात्र ही सूर्य का पुत्र यम है। श्राद्धनिर्णय में इसका वर्णन देखिये ! रात्रि यमी और दिन यम है। मन ही चित्रगुप्त है क्योंकि मनही गुप्त रीतिसे शुभाशुभ सब कर्मों को लिखता रहता है जो कुछ मनुष्य करता है उसका फोटो मन पर खींचा जाता हैं। यह मन एक अद्भुत पदार्थ है। ये सप्तेन्द्रिय-युक्त शरीर ही स्वर्ग वा नरक है अन्य नहीं। क्या इसी शरीरसे नाना यातनाओं को लोग भोग नहीं रहे हैं?

अनेक सप्तक गण—यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि वेदोंमें सूर्य सहस्ररश्मि, सहस्रकिरण कहा गया है। किरणों में सात प्रकार के रङ्ग है। अतः सूर्य सप्तकिरण है। पश्चात् अज्ञानी जन सूर्य के रथ में सचमुच सात घोड़े मानने लगे। सूर्यवत् यह जीवात्मा भी सहस्ररश्मिहै। नयनादि कहीं इसके किरण हैं एवं परमात्मा ने गायत्री, अनुष्टुप् आदि

सप्त छन्दों में वेदों का उपदेश किया है। सूर्य और जीव के सप्त किरण लेके धीरे २ अनेक सप्तक बनते गये। रवि, सोम, आदि दिन भी सप्त माने गये हैं। निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम ये सप्तगान स्वर हैं। व्याकरण में प्रथमा, द्वितीया आदि सप्त विभक्तियां हैं इसी प्रकार सप्त पाकयज्ञ, सप्त हविर्यज्ञ, सप्त सुत्य आदि हैं!

इन्द्र देव---मैंने इस लेख में लिखा है कि जीवात्मा का नाम इन्द्र है। यद्यपि यह शब्द अनेकार्थक है तथापि ऐसे प्रकरण में जीवात्मा को इन्द्र कहते हैं। वेदों के पढने से प्रतीत होता है कि सूर्य और जीवात्मा के अर्थ में इसके भूरि २ प्रयोग हुए हैं-१-नाम, २-कर्म, ३-और परिवार से इन्द्र जीवात्मा सिद्ध होता है १-इंद्रिय=इन्द्र शब्द से इन्द्रिय बनता है। महर्षि पाणिनि कहते हैं कि—इंद्रियमिन्द्रलिङ्ग मिन्द्रदृष्ट मिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्ट मिन्द्रदत्तमिति वा। सू०। २। ९३। इन्द्रिय शब्द के इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट इन्द्रजुष्ट इन्द्रदत्त ये पांच अर्थ हैं "इन्द्र आत्मा तस्यलिङ्ग मिन्द्रियम्" इत्यादि। इन्द्र=जीवात्मा इसका सूचक इन्द्रिय है अर्थात् नयनादियों के अस्तित्व से जीवात्मा के अस्तित्व का पता लगता है अतः नयनादिकों को इन्द्रिय कहते हैं। इसी प्रकार इन्द्रदृष्ट आदि का अर्थ समझिये। शतक्रतु=जिसके नानाकर्म हैं "शतं क्रतवः कर्माणि यस्य" अथवा जीवात्मा के जो १०० वर्ष

की आयु है वे ही क्रतु अर्थात् यज्ञ है । जिसके जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त १०० वर्ष जिसका शुद्ध जीवन बीता है वही यथार्थ इन्द्र है । अतः पुराणों में कहा गया है कि जो १०० यज्ञ करता है वह इन्द्र होता है । ठीक है । निश्चय जिसकी सम्पूर्ण आयु जो १०० वर्ष की है शुद्धता से बीत रही है वही जीवात्मा इन्द्रपदधारी होगा । क्योंकि "इदि परमैश्वर्य्ये" परमैश्वर्य्यशालीको इन्द्र कहते हैं। पश्चात् जब इन्द्र एक पृथक् देव माना गया तो इसके ऊपर यह लांछन लगाया कि यह इन्द्र किसी को १०० यज्ञ करने ही नहीं देता, घोड़ा चुराकर यज्ञ में विघ्न डाल देता । मरुत्वान्=मरुत्=वायु =प्राण । इन्द्र के ४९ वायु साथी हैं । यह सिद्ध करता है कि जीवात्मा का ही नाम इन्द्र है । इसी प्रकार अन्यान्य नाम भी इसी अर्थ के सूचक हैं ।

इन्द्र और ४९ मरुत्—महाभारत वाल्मीकीय रामायण और भागवत आदिक ग्रन्थों में लिखा है कि देवासुर संग्राम में पुत्रों के मरने से परमदुःखिता दिति देवी एक दिन स्वामी कश्यपजी से प्रार्थना कर बोली कि इन्द्रहन्ता एक पुत्र मुझे दीजिए ! कश्यपजी ने कहा कि एक वर्ष नियम धारण कीजिये वैसा ही एक पुत्र होगा । दिति व्रत करने लगी । इन्द्र ने यह खबर सुन एक दिन दिति को अशुचि जान पेट में प्रवेश कर उदरस्थ बालक के सात टुकड़े कर दिये । पुनः एक २ के सात २ टुकड़े किये वह बच्चा पेट में रोने लगा, इन्द्र ने कहा कि मारुदिहि २ "मत रोओ मत रोओ । अतः उसका नाम मरुत् वा मारुत हुआ ।

दितिने यह साहस देख प्रसन्न हो इन्द्रसे कहाकि तुम्हारे ये भाई हैं अपने साथ ही इन्हें भी रक्खो। इन्द्र ने भी इसे स्वीकार किया। तब से ४९ वायु इन्द्र के गण हुए। इन्द्र मरुत्वान् कहलाने लगा। यह ऐतिहासिक कल्पना है।

प्रमाण—

चकर्त्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम्। रुदन्तंसप्तधैकैकं मारोदीरिति तान् पुनः। भागवत ६। १८॥

समीक्षा—मा रोदीः२ वा मा रुदिहि२ इत्यादि कथन से मरुत् यह नाम नहीं हुआ किन्तु यह मर मर शब्द करनेहारा है वा मारनेहारा है क्योंकि प्राण वायु के निकलने से ही आदमी मृतक समझा जाताहै। समष्टि अर्थात् समुदाय अखण्ड का नाम अदिति है (न+दिति=अखण्ड, समुदाय, अविनाश) और व्यष्टि अर्थात् पृथक्२ मनुष्य पश्वादि शरीर दिति है (दिति=खण्ड, विनाश) प्रत्येक माता दिति है। जब गर्भ रहता तब एक ही समुदाय प्राणवायु उस जलीय गर्भ के साथ रहता है। आत्मा के प्रवेश होते ही अङ्ग प्रत्यङ्ग बन के वही प्राण सात हिस्सों में विभक्त हो नयनादि सात बनजाता है। पश्चात् एक२ नयनादिकों के जोअनन्त विषय हैं उनको ७×७=४९ उनचास नाम देते हैं यह एक वर्णन करनेकी प्राचीन शैली है। इस आख्यान से विस्पष्टतया सिद्ध है कि यह जीवात्मा का ही वर्णन है। क्योंकि सात नियत संख्याएं इसी शरीर में हैं इसीमें जीवात्मा के प्रवेश से एक २ सात होते हैं और पुनः ग्रहणीय विषय करके ७×७=४९

होते हैं बाह्य जगत् में कोई ४९ मरुद्गण नहीं। विस्तार से वैदिकइतिहासार्थनिर्णय में देखिये। इस कर्म्म से भी सिद्ध है कि जीवात्मा ही इन्द्र है। पुनः—

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयःस्पृधः ॥

चारों वेदों में यह ऋचा आई है (इन्द्र अपां फेनेन) हे इन्द्र! आप जल के फेन से (नमुचेः शिरः उदवर्त्तयः) नमुचि नाम के असुर के शिर को काट लेते हैं। कब? (यद्) जब (विश्वाः स्पृधः अजयः) सम्पूर्ण स्पर्धमान आसुरी सेनाओं को जीतते हैं इस पर शतपथ ब्राह्मण कहता है—

इन्द्रियस्येन्द्रियमन्नस्य रसं सोमस्य भक्षं सुरयाऽसुरो नमुचि रहरत् सोऽश्विनौ च सरस्वतीं चोपाधावत्। शेपानोऽस्मि नमुचये न त्वा दिवा न नक्तं हनानि। न दण्डेन न धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न शुष्केण नार्द्रेण अथ म इदं महार्षीदिदं म आजिहीर्षथेति"। शत० ब्रा० १२। ७। ३ ॥

असुर नमुचि ने सुरा पिलाकर इन्द्रके ऐश्वर्य, अन्नके रस और सोमयज्ञ के भक्ष का हरण कर लिया। तब अश्विद्वय और सरस्वती के निकट जा के इन्द्र बोला कि मैं नमुचि को वर दिया कि न दिन में न रात्रि में तुम्हें मारूंगा न दण्ड से न धनुष् न मुष्टि से न शुष्क न आर्द्र

अर्थात् किसी अस्त्र से मैं तुम्हें न मारूंगा। इसने मेरा सर्वस्व हरण करलिया हे देवी! मेरी रक्षा कीजिये। तब अश्विद्धय और सरस्वती जल के फेन को वज्र बना इन्द्र को दे बोले कि यह न शुष्क न आर्द्र है। प्रातःकाल जो न दिन और न रात्रि है उस समय इससे उसको मारदो इन्द्र ने भी वैसाही किया

यह आख्यान भी सूचित करता है कि जीवात्मा का ही नाम इन्द्र है क्योंकि "पाप्मा वै नमुचिः।" शत० ब्रा० १२।७॥ पाप, अज्ञान, अविद्या, अन्धकार का नाम नमुचि है। "न मुञ्चति न त्यजतीति नमुचिः" इस जीवात्मा को अज्ञान वा पाप कभी नहीं छोड़ता अतः अज्ञान-पाप का नाम नमुचि है। "नभ्राण्नपान्नवेदा नासत्या नमुचि नकुल नख नपुंसक नक्षत्र नक्र नाकेषु प्रकृत्या ६।३।७५॥ सूत्रानुसार नमुचि सिद्ध होता है यह नमुचि जीवात्मा को सुरा अर्थात् मदकारी पदार्थों के द्वारा मोहित कर भोगविलास में फंसा सब हरण कर लेता। पहिले जीव को भोगविलास--अतिमनोहर मालूम होते। महादुर्व्यसन में फंसना ही नमुचि को इन्द्रद्वारा वर पाना है। यह पापरूप महासुर जीव को त्रिभुवन से गिरा देता है। वही इन्द्र का त्रिलोकीराज्य से भ्रष्ट होना है। जब पुनः नाना दुःख क्लेश यातना पाके किञ्चित् विवेक होता तो घबराकर वह इन्द्र अश्विद्धय और सरस्वती के निकट पहुंचता। अहोरात्रकाल वा तेजोऽन्धकार सम्मिल प्रातःकाल ही अ-

शिवद्वय और विद्याही सरस्वती है अर्थात् जब जीवात्मा विद्या ज्ञान विवेक आदिकों का अभ्यास करता हुआ प्रात काल ईश्वर का चिन्तन करता है तब पापों से छूटने लगता है। विद्याएं, विवेक और प्रातःकाल के विचार इस उपासक को शुभ कर्म्म की ओर लेजाते हैं शुभ कर्म्मों का सम्पादन करना ही आप् (जल) है। वेदों में आप् शब्द शुभकर्म्म का उपलक्षक होतो है शुभकर्म्म करते करते इसको ज्ञान प्राप्त होजाता है। यही अपांफेन है। इस ज्ञानरूप महावज्र से प्रातःकाल अर्थात् ईश्वर के चिन्तन के परमोत्तम समय में प्रतिदिन नमुचि को पछारना शुरू करता है। धीरे २ नमुचि के काम लोभ, दुर्व्यसन, अज्ञान 'आदि गणों को मारकर इसे भी हनन कर इन्द्र निश्चिन्त हो पूजित होने लगता है। यही इस ऋचा और आख्यान का आशय है आप पण्डित महाशय इसे विचारें।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव ॥ ऋग् १।८४।१३॥

यह ऋचा भी सब वेदों में आई है (अप्रतिष्कुतः इन्द्रः) अधर्षणीय अजेतव्य इन्द्र (दधीचः अस्थभिः) दध्यङ् ऋषि की हड्डियों से (नवतीः नव वृत्राणि) ९० और ९ वृत्रों को (जघान) हनन करता है। अस्थभिः=छन्दस्यपि दृश्यते इति अनजादावपि अस्थिशब्दस्य अनङादेशः।

व्याख्या—यह आख्यान भी इसी अर्थ का साधक है। वेदों में दध्यङ्औरअन्यान्यग्रन्थोंमेंदध्यङ्औरदधीचिदोनो

पाठ आते हैं। शतपथादि ब्राह्मण ग्रंथों से लेकर तुलसीदास के रामायण पर्य्यन्त दधीचि की हड्डी से इन्द्रने असुरोंको मारा है यह गाथा गाई गई है। इसके १८ वें पृष्ठ में ९९ नदियों से इन्द्र पार होता है यह कहा गया है। यहां ९०+९=९९ वृत्रों की चर्चा देखते हैं वे वृत्र कौन हैं ? इसके रहस्य के जाने विना इसका आशय प्रगट नहीं होता आवरणशील मेघ, अज्ञान, अन्धकार, पाप आदिकोंको वृत्र कहते हैं। वे ९९ हैं। क्यों ? देवों की ३३ संख्या है यह विदितही है। ये मनसहित एकादश इन्द्रिय उत्तम, मध्यम, अधम भेद से ३३ होते हैं। और ३३×३=९९ हैं। वेदों की एक यह शैली है कि दुष्टों की संख्या त्रिगुण अधिक दिखलाते हैं, जैसे वेदों में कहा है कि इन्द्र द्विनेत्र एक शिरस्क है किन्तु वृत्र षडक्ष (छः आंखवाला) और त्रिशीर्षा तीन शिर-वाला है। अतः देवों अर्थात् शुभ इन्द्रियों की संख्या ३३ है और तद्विपरीत असुरकीके ९९ हैं अर्थात् मनुष्य में यदि शुभ कर्म्म करने की शक्ति एक है तो अशुभ कर्म्म करनेकी शक्ति तीन हैं। इसी भाव को ९९ यह संख्या दिखलाती है: दध्यङ् यह नाम ज्ञानी पुरुषों का है (दधातीति दधिर्धाता परमात्मा तमञ्चतीति दध्यङ्) अस्थि=विद्वानों की निकाली हुई विविध विद्याएं। विद्वानों की हड्डी भी काम आती है यह कहावत लोक में सुप्रसिद्ध है। इन्द्र=जीवात्मा। वृत्र अर्थात् नाना पाप अज्ञान जब इन्द्र (जीवात्मा) को घेर कर विवश कर लेते हैं तब यह उद्विग्न हो विद्वानों के निकट जाता है उनसे शिक्षाएं पाके मानो उन शिक्षाओं

को ही अपना परमास्त्र बना वृत्रों को मारदेता है। वैदिक इतिहासार्थ निर्णयमें विस्तारसे वर्णित कथा को देखिये।

इन्द्र और संग्राम—यह भी इसी अर्थ का द्योतक है। वेदोंमें इन्द्र का मुख्य कार्य्य संग्राम करना और विजय के द्वारा देवों व भक्तोंको लाभ पहुंचानाहै। इसके वृत्र, नमुचि, शम्बर, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वल, अर्बुद, वर्ची, कुयव आदि अनेक शत्रुहैं "शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदाऽवधीर्वि पुरः शम्बरस्य" ऋग् १।१०३।८॥ इसी एक ऋचा में अनेक नाम आये हैं जिनको इन्द्र मारा करता है। जब देवगण यज्ञों में इन्द्र को अभिषिक्त करके यज्ञोंके विविध भाग देतहैं तब वह बलिष्ठ हो निखिल असुरों का निपात करता है। इस वर्णनका भी भाव यह है कि जब जीवात्मा शुभ कर्म्मों में प्रवृत्त होता है तब ही पापरूप महान् असुरों को अपने निकट नहीं आने देता यही इसका विजय है।

इन्द्र के परिवार—शची इन्द्र की स्त्री मानी जाती है। कर्म्म और प्रज्ञा का नाम भी शची है निघण्टु। २। १ और ३। ९। जीवात्मा के कर्म्म अर्थात् प्रयत्न और ज्ञान ये दोनों मुख्य गुण हैं। अतः इन्द्र की स्त्री शची कहाती है। इन्द्राणी=इन्द्र की स्त्री ऐसे २ स्थानों में शक्तिव गुण अर्थ में स्त्री शब्द का प्रयोगहै। शची और इन्द्राणी शब्द के पाठ वेदों में बहुत हैं :—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगा महमश्रवम्। नह्यस्या अपरञ्चन जरसा मरते पतिः। सर्वस्मादिन्द्र उत्तरः १०। ९९॥

इन्द्र का घोड़ा उच्चैःश्रवा है। यह शरीर ही उच्चैःश्रवा है क्योंकि इस मानवशरीर का ही यश उच्च है। श्रव = यश। यह शरीर ही ऐरावत हाथी है क्योंकि यह अन्नमय है वा अन्न से पुष्ट होता है। इरा = अन्न। इत्यादि परिवार के वर्णन से भी इन्द्र जीवात्मा सिद्ध होता है।

इन्द्र और सूर्य्य--सूर्य्य को भी इन्द्र कहते हैं। इस सम्बन्ध में भी अनेकानेक वर्णन आते हैं। सहस्राक्ष, देवराज, स्वर्गाधिपति, मघवा, वृत्रघ्न, मरुत्वान् इत्यादि नामों से सूर्य्य भी पुकारा जाता था। जब सूर्य्य से भिन्न इन्द्र एक पृथक् देव कल्पित हुआ तब इसके सम्बन्ध में अनेक इतिहास उत्पन्न होने लगे। जैसे इन्द्र को सहस्राक्ष सिद्ध करने के लिये इतिहास गढ़ा गया कि अहल्या को दूषित करतेहुए इन्द्र को गौतम ने शाप दिया कि तेरा सम्पूर्ण शरीर विकृत होजाय पश्चात् इन्द्र के पुनः २ विनय करने पर प्रसन्न हो गौतम ने कहा कि रामावतार में तेरा शरीर सहस्र नेत्रों से युक्त होगा। तब ही से इन्द्र सहस्राक्ष कहलाने लगा। अप्सरा--यह नाम और घृताची, मेनका, उर्वशी आदि नाम सूर्य के किरणों के अथवा प्रातःकाल के थे। पश्चात् इन्द्र पृथक् देव होने पर ये सब इन्द्र की वेश्याएं बन गईं। पर्वत, अद्रि, गिरि आदि मेघ के नाम थे। निघण्टु १।१०॥ इन्द्र अर्थात सूर्य मेघ को बनाता और विध्वस भी करता है अतः सूर्यही पर्वतघ्नपर्वतच्छेदी था। पश्चात् ये सब गुण इन्द्र में आरोपित हुए। इस प्रकार शब्दशास्त्र और संस्कृत साहित्य में महान् परिवर्तन हुआ है। मुझे शोक के साथ

लिखना पड़ता है आज भारतवासियों में स्वल्प पुरुष हैं जो इस महान् परिवर्तन से परिचित हों ।

वेद और इतिहास—यद्यपि, मैत्रावरुण वसिष्ठ, कौशिक विश्वामित्र, मामतेय दीर्घतमा, अगस्त्य, लोपामुद्रा, वसिष्ठोर्वशी, उर्वशी पुरूरवा, कूपपतित त्रित, दीर्घतमा, शुनःशेप, दधीचि, च्यवन, सोभरि, ययाति, नहुष, भरत, रोमशा, अपाला, घोषा आदिकों की चर्चा आती है। परन्तु वेदों के देखने मात्र से प्रतीत होजाता है कि ये परार्थद्योतक हैं। किन्हीं अनित्यमानव इतिहासों नहीं, इसीप्रकार सप्तसिन्धु, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोमती, गन्धार आदि पद देखकर जो आधुनिक ऐतिहासिकपुरुष अनुमान करते हैं कि वेदों में भारतवर्षीय इन गङ्गा, यमुना आदि नदियों का और कन्धार आदि देशों का वर्णन आता है वे सर्वथा भ्रम में पड़े हुए हैं। सर्वदा सप्तसिन्धु पद क्यों आता है वेद क्योंकर सप्तसिन्धु इस पद पर वारम्वार जोर देते हैं इत्यादि वैदिक संकेत पर यदि इतिहासवित् पुरुष दृष्टि डालेंगे तो उनको सर्व भ्रम दूर होजायगा। मैं जगत् के सम्पूर्ण इतिहासप्रिय विद्वानों से निवेदन करताहूं कि मेरे वैदिक व्याख्यानों पर ध्यान देवें और इस शैली से पुनः वेदों का विचार कर देखें कि वेद भगवान् क्या कह रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन पर इस शताब्दी में ऐसा वज्रप्रहार हुआ है कि इनको स्वस्थ होने में बहुत काल लगेगा, यदि सहस्रों सद्वैद्य विचार कर इनको दवाई करने लग जांय।

शुभमस्तु ॥

वैदिक-रहस्य ॥

आर्य्यभ्राताओ ! अभीतक वेदों के ऊपर साक्षात् विचार यथार्थरूपसे आर्यो तथा पौराणिकों में नहीं हुआ है। वेदों पर कितने लाञ्छन लगाए हुए हैं उनको कौन नहीं जानता। प्रत्येक भारतवासी को उचित था कि वह इस ओर पूरा ध्यान देता, परन्तु कई सहस्र वर्षो से यह कार्य न हो सका। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कई वर्षो से वेद सम्बन्धी लेख लिख आपके निकट पहुंचा रहा हूं। अभी तक मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हूआ, मैं इतने से प्रसन्न नहीं हूं अब मैं आप लोगों की सहायता से चाहता हूं कि वेदों के गुप्त २ अर्थ प्रकाशित किये जांय। नमूना के लिये यह "चतुर्दश भुवन" प्रथम आपके समीप उपस्थित है विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं, यदि आप लोग इससे कुछ लाभ समझते हैं तो इस के ग्राहक बनें और बनावें। अग्रिम मूल्य भेजनेवालों को १००० एकसहस्रपृष्ठों का ग्रन्थ ३।।=) में मिलेगा इस के चार भाग निकल चुके हैं।

भवदीय
शिवशङ्कर

ग्रन्थ मिलने का पता

मंत्री, आर्य्यसमाज
मु० डा० कमतौल
ज़िला दरभङ्गा

ग्रन्थकर्त्ता के अन्यान्य ग्रन्थ—

१—छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, संस्कृत और आर्य्य-भाषासहित मूल्य ३)

२—बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य, संस्कृत और आर्य्यभाषासहित २)

३—ओङ्कारनिर्णय ... ... ,, ,, ।–)

४—त्रिदेवनिर्णय ... ... ,, ,, ।।।)

५—जातिनिर्णय ... ... ,, ,, १)

६—श्राद्धनिर्णय ... ... ,, ,, ।।।)

७—वैदिक इतिहासार्थनिर्णय ,, ,, १।।)

८—अलौकिक-माला... ... ,, ,, –)

९—कृष्णमीमांसा ... ... ,, ,, –)।।

१०—प्रश्न–रामायण-प्रेमियों के प्रति गूढ़ २ प्रश्न हैं ,,)।

पुस्तक मिलने का पता—

मंत्री, आर्य्यसमाज

मु० डा० कमतौल

ज़िला दरभङ्गा